# नन्हे पौधे की बात

राजीव बिलैया

घर के अहाते में उगे नन्हे पौधे को पानी देते हुए मैं सोच रहा था कि ये जीवन के प्रति उत्साह और सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करते हैं, तब ही मेरे तीन वर्षीय बच्चे ने आ कर एक सवाल दागा, "पापा जी, आप क्या कर रहे हैं?" मैंने जवाब दिया, "बेटा, पौधों को पानी दे रहा हूँ।" उसने पूछा, "क्यों पानी दे रहे हैं?" जवाब आसान था पर उस बच्चे को समझाने के लिए शब्द नहीं सूझ रहे थे। जो शब्द मन में आए वे सभी बड़े-बड़े थे। मैंने बस यूँ ही कह दिया, "पौधों को प्यास लगी थी न इसलिए।" बाल-मन में तो मानो हलचल मच गई। थोड़ा चुप रह कर उसने पूछा, "ये पानी कहाँ से पीते हैं? इनका मुँह कहाँ है? और आपको कैसे पता चला कि इनको प्यास लगी है?" इतने प्रश्न एक साथ आए, लगा बच्चे के मन में

कोई धारणा बन रही है।

अब तो टालना मुश्किल था, सोचा, शुरू कहाँ से करूँ। मैंने कहा, "पौधों का हमारे जैसा मुँह नहीं होता पर ज़मीन के अन्दर पौधों की जड़ें होती हैं जिससे वे पानी पीते हैं। जब भी मिट्टी सूखी दिखाई देती है हम जान जाते हैं कि पौधे को प्यास लगी है।" अब उसका अगला प्रश्न था, "पापा जी, इनको खाना कब देते हैं? क्या ये खाना जड़ से ही खाते हैं?"

यह प्रश्न मेरे लिए पूर्व के प्रश्न से कठिन हो चला था। सोचा, सीधे कह दूँ कि सूर्य के प्रकाश में पौधे क्लोरोफिल की सहायता से अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। पर सामने खड़े बच्चे को भला क्या समझ आएगा। एक विचार और आया, कह दूँ कि अरे भई मुझे परेशान मत करो, जाओ खेलो। एक और विकल्प था कि विषयान्तर करके इस प्रश्न से बचा जाए, जैसा कि प्रायः बच्चों के साथ किया जाता है, पर कोई भी विकल्प ऐसा नहीं था जो मुझे स्वीकार्य हो। मैंने तय किया कि बच्चे को समझाया जाए, पर कैसे? मैंने कहा, "पौधों को खाना देने की ज़रूरत नहीं होती। ये अपना खाना खुद ही बना लेते हैं।" बच्चे ने पूछा, "पापा जी, इनके पास न तो बर्तन हैं और न ही खाना बनाने के लिए कोई और सामान, फिर ये खाना कैसे बनाते हैं?"

मुझे अब लग रहा था कि बच्चे का हर प्रश्न मेरे लिए समाधान के प्रयास में सहयोग करने वाला साबित हो रहा है। इतना ही नहीं, मैं यह भी सोच रहा था कि भले प्रश्न बच्चे के हों, पर ये हम सबको सोचने पर कितना मजबूर करते हैं। मुझे हाल ही में पढ़े उस लेख का ध्यान आया जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि

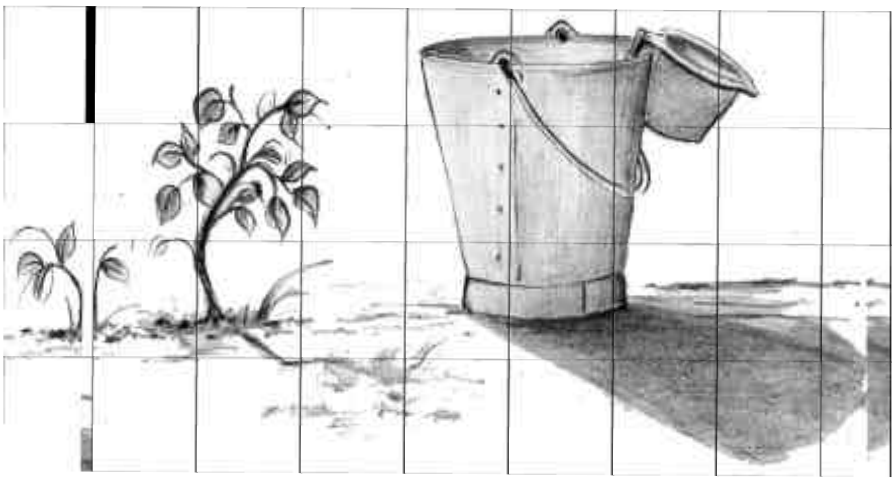

भोजन के लिए हम वनस्पति और सिर्फ वनस्पति पर ही निर्भर हैं। शाकाहारियों के लिए यह निर्भरता प्रत्यक्ष रूप से है तो मांसाहारियों के लिए अप्रत्यक्ष रूप से। स्वपोषी कहलाने वाले ये पौधे खुद के लिए तो भोजन बनाते ही हैं, हमारे लिए भी व्यवस्था करते हैं।

मैंने बच्चे से कहा, "पौधों को भोजन बनाने के लिए बर्तन की ज़रूरत नहीं होती, ये सूर्य की किरणों के सहारे अपना भोजन बना लेते हैं।" मैंने आगे कहा, "ये न केवल अपने लिए बल्कि हमारे लिए भी भोजन बनाते हैं।" बच्चे को आश्चर्य हो रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे वह मेरी बातों पर विश्वास नहीं कर पा रहा है। मैंने अपनी बात को और स्पष्ट करने की गरज से कहा, "आम, अमरूद, सीताफल ये सब हम खाते हैं न, टमाटर, कद्दू लौकी, आलू ये सब सब्ज़ी भी हम लोग खाते हैं।" बच्चा खामोश था। मेरा-उसका संवाद अब बच्चे की दृष्टि में नीरस और बोझिल हो चला था।

अचानक बच्चा कह पड़ा, "पापा जी, आपने तो इन पौधों के कपड़े गीले कर दिए।" विषयान्तर करता उसका ये कथन बाल-मन की सहजता और सरलता को इंगित कर रहा था। मैंने कहा, " हमने कौन-से कपड़े गीले कर दिए?" वह बोला, "ये हरे-हरे कपड़े।" मुझे शायर की ये पंक्तियाँ याद आ गईं,

*बच्चों के नन्हे हाथों को*
*चांद-सितारे छूने दो,*
*चार किताबें पढ़कर वो भी*
*हम जैसे हो जाएँगे।*

बच्चों की अपनी दुनिया होती है और उनका अपना नज़रिया। मुझे लगता है कि शायद मैं बच्चे को समझा पाने में असफल रहा। उनकी नन्ही, सरल और सहज दुनिया मेरे लिए कितनी जटिल और कितनी कठिन है।

---

**राजीव बिलैया:** रेलवे स्कूल, भिलाई में प्रायमरी कक्षा के शिक्षक हैं।
**सभी चित्र: जितेन्द्र ठाकुर:** एकलव्य, भोपाल में डिज़ाइन एवं प्रोडक्शन इकाई में कार्यरत हैं।